स्तोत्रों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिष्ठान

पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन से प्रकट है कि प्राय: समस्त स्तोत्र-साहित्य की मूलभूत प्रेरणा प्रधानतया दिव्य शक्तियों अथवा परमात्मा के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति की रही है । इसी भावना से प्रेरित होकर कवियों ने या तो उसके अव्यक्त रूप के प्रति आत्म-निवेदन के साथ विनय भाव पूरित उद्गार प्रकट किये हैं अथवा उसके सगुण रूप के प्रति उपर्युक्त भावों के अतिरिक्त उनके लीलागान की वाग्धारा प्रवाहित की है जिसके साथ आधुनिक काल में आकर राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावना से पूर्ण एतद्विषयक रचनाओं के अनेक छोटे-मोटे प्रवाह मिल गए हैं । "साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब माना गया है।[1] अत: जनरुचि या सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव काव्य पर पड़ना अनिवार्य सा है । हिन्दी के स्तोत्र-साहित्य के निष्कर्ष पर सहज ही पहुंचा जा सकता है कि देशगत संस्कृति एवं समाज के अधिष्टान के साथ उसका अनिवार्यसम्बन्ध सदा से रहा है । प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत इसी पर विचार किया जा रहा है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "संस्कृति मानव की साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है । मानव द्वारा युग-युगान्तर तक अर्जित किए जाने के कारण वह एक प्रकार से सामाजिक परम्परा भी है ।" अत: संस्कृति और समाज को एक दूसरे का अभिन्न अंग कहा जा सकता है । यही कारण है कि प्रत्येक देश के समाज विशेष की अपनी निजी संस्कृति हुआ करती है जोकि उसके स्थान पर प्रतिष्ठित होकर वहाँ के मानव-जीवन को प्रेरित एवं प्रभावित करती रहती है । इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो हमारे विवेचन का मूल विषय- स्तोत्रसाहित्य का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष ही है ।

संस्कृति के दो पक्ष हैं --- भौतिक एवं आध्यात्मिक । भौतिक में वेष-भूषा, रहन-सहन, राजनीति, आदि आते हैं और आध्यात्मिक में धर्म एवं

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- हिन्दी साहित्य का इतिहास

दर्शन । स्त्रोत्र-साहित्य का सम्बन्ध भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों से है ।

भारतीय संस्कृति के मूल स्त्रोत वेद हैं । वेदों में विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं की स्तुतियां हैं जिनकी रचना आर्यों ने विशेष सामाजिक भावनाओं से प्रभावित होकर की थीं । वैदिक आर्य स्वभावत: आशावदी प्राणी थे अत: उन्होंने प्रकृति की विचित्र लीलाओं के प्रति विस्मय पूर्ण होकर देखा और इन्हीं प्राकृतिक लीलाओं को सरलता से समझाने के लिए नाना देवताओं की कल्पनाएं कीं । वे मानते थे कि इन्हीं प्राकृतिक देवताओं के अनुग्रह से जगत का समस्त कार्य संचालित होता है तथा अनेक घटनाएं हो सकती हैं । अत: उनकी आराधना के गीत लिखे । विभिन्न देवताओं की आराधना के कारण इस काल में बहुदेवोपसना का अनुमान लगा लिया जाता है । परन्तु इन्द्र, वरुण, रूद्र, मरुत, आदि देव रूपों में सर्व शक्तिमान सृष्टि के आदि कारण, परब्रह्म परमात्मा के ही स्वरूप समझे जाते थे[1] ।

देवताओं के त्रिविध रूपका विवेचन वेदों में हुआ है । आर्यों ने जिस रूप को इन्द्रियों से ग्राह्य किया वही आधिदैविक रूप माना गया । सूर्य के तीन रूप एक मंत्र में वर्णित मिलते हैं । सृष्टि के आदि में ऋतु की ही उत्पत्ति मानी गई जो सत्यभूत ब्रह्म है । उसी में अनेक देवताओं की अभिव्यक्ति हुई:-

> इंन्द्रं मित्रं वरुणंमाग्निमाहु रथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान् ।
> एकं सद् विप्रा बहुधावदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानयाहु : ।।

वैदिक काल के देवताओं का विवेचन पूर्व अध्यायाओं में किया जा चुका है । वेदों में सबसे अधिक स्तुतियां इन्द्र की हैं । वही शत्रुओं और राक्षसों का संहार करने वाला है, उसी के निर्देश से वर्षा होती है । इसीलिए आर्यों ने इन्द्र के स्त्रोत्र लिखे थे । अग्नि के विषय में स्त्रोत्रों का मुख्य कारण लौकिक व्यवहार तथा जीवन निर्वाह का संपादक प्रकाशमय अग्नि याज्ञिक वैदिक समाज का मान्यदेव है । वह प्राणियों का सबसे अधिक हितकारक देवता

१- हिन्दी-साहित्य का वृहद् इतिहास-- डॉ बल्देव उपाध्याय पृष्ठ ४२३

है जिसकी अनुकम्पा तथा प्रसाद से ही प्राणी दिन प्रतिदिन धन, पुत्र, पौत्र आदि सम्पत्ति को प्राप्तकरता है ।[1] गायत्री मन्त्र का जाप, प्रात: संध्या अपनी बुद्धि को प्रेरणा देने के लिए किया जाता है, उसका देवता `सविता` है।

रुद्र को अग्नि का प्रतीक माना जाता है और यही कारण है कि उनके ज्योर्तिलिंगों की कल्पना, जल से अभिषेक, भस्मधारण आदि शिव-भक्तों की क्रियाएं इसी प्रतीक का उदाहरण हैं ।

पूजा पद्धति :

१- प्रार्थना :

सूक्ति, स्तुति, स्तवन, आशंसा आदि से देवताओं को प्रसन्न किया जाता था और सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए उनसे प्रार्थना की जाती थी । ऐसा पूर्व पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है ।

२- यज्ञ :

स्तोत्रों का प्रयोग आर्य लोग यज्ञ के अवसरों पर करते थे । सरस्वती, इन्द्र आदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अज, मेष तथा वृषभ की बलि दी जाती थी । इससे सिद्ध होता है कि उस समय बलि प्रथा का भी प्रचार था । राजसूय यज्ञ आदि में मंत्रों के द्वारा देवताओं का आह्वान किया जाता था ।

३- मूर्तिपूजा एवं मंदिर का अभाव :

आर्य सदैव प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों में आत्मदर्शन करते थे । अत: उसे मूर्ति जैसे प्रतीक और उसके संस्थानों की आवश्यकता न थी। सम्भवत: यही कारण है कि वैदिक साहित्य में मन्दिर और मूर्तियों की चर्चा नहीं मिलती है ।

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी – [illegible]

१- ~~हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास-- डा० बल्देव उपाध्याय, पृ० ४२३~~

४- नीति :

समस्त समाज चार वर्णों में विभक्त था । जिसमें यज्ञ का संपादक और निर्वाहक होने के कारण ब्राह्मण अग्रतम था । समाज में अतिथि सेवा पूर्णतया प्रचलित थी[1] । यज्ञ की अधिकारिणी होने के कारण समाज में पत्नी का पूजनीय रूप था[2]।

ब्राह्मण काल में अग्नि के स्थान पर विष्णु का प्रभाव अधिक बढ़ा। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु की श्रेष्ठता सिद्धि के लिए एक यज्ञ किए जाने का उल्लेख है ।[3]

उपनिषद्काल में ओंकार की उपासना महत्वपूर्ण मानी गई है । ओंकार स्वयं परम तत्व है और उसके ध्यान से गूढ़ाविगूढ़ तत्व का अनुभव होता है । यही औपनिषद-तत्व ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है ।

पौराणिक काल :

पंचदेवोपासना इस काल में मुख्य वस्तु है । वैदिक मंत्रों में इन सबकी उपासना है । येदेवता विष्णु, शिव, शक्ति , गणपति तथा सूर्य हैं ।वास्तव में पौराणिक धर्म का मूल आधार अवतारवाद है । इनके विषय में पूर्व अध्यायों में विवेचन हो चुका है । यहां केवल उसके सामाजिक पक्ष पर विचार करना है ।

१- तस्मादाहुर्न सायमति थिर परुन्ध्य: ।। ऐ० ब्रा० ५।३०।

२- अयज्ञो वा एष यदपत्नीक: तैत्तरीय ब्राह्मण २।२।२।६ ।

३-आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी -- सूरदास पृ० ७
शतपथ ब्राह्मण १४।१।१

पूजन पद्धति :

समवेत: - पुराणों में भक्ति के साथ-साथ सदाचार पर भी बल दिया गया है क्योंकि धर्म का मुख्य लक्षण आचार ही है[1]। आचार हीनता का समाजिक रूप में निषेध किया गया है ।

मूर्ति पूजा एवं मंदिर :- विविध देवताओं की मान्यता के कारण पौराणिक काल में मंदिरों तथा मूर्तियों का निर्माण? स्थापना और पूजन का अधिक महत्व था ।

तीर्थयात्रा :- ऋग्वेद के नदी सूक्त में सिंधु की स्तुति के समान ही पुराणों में गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, महानदी नर्वदा आदि की स्तुतियां हैं जो उनके महत्व का स्पष्टीकरण करती हैं और सामाजिक जीवन में नदियों के प्रति श्रद्धा की भावना का यथार्थ स्पष्टीकरण करती हैं । इन्हीं के साथ-साथ काशी, मथुरा आदि पवित्र स्थानों की यात्रा पर भी बल दिया गया है । वास्तव में "भिन्न भिन्न तीर्थों की पुण्यमयी यात्रा का तत्तत् उपास्य देवता की पूजा के साथ वर्णन भारतीय धर्म की व्यापकता सार्वभौमता तथा विशालता का एक जाज्वल्यमान प्रतीक है ।[2]

व्रत :- पौराणिक काल की स्तुतियों में 'व्रत' का भी महत्व है । इसकी चर्चा पुराणों में सर्वत्र है ।[3] भावमयी मूर्तियों का स्थापना, विशाल कलात्मक मंदिरों का निर्माण और पूजा का विधि विधान पौराणिक काल के धर्म एवं स्तोत्रों का मूल आधार है । यहां एक तथ्य और स्पष्ट कर देना है और वह है 'व्रतों' से सम्बन्धित साहित्य जिसमें एकादशी माहात्म्य

१- आचार लक्षणों धर्मः सन्तश्चारित्र लक्षणाः
साधूनाम् च यथा वृत्तिमेतद् आचार लक्षणम् ।।

२- आचार्य राजबली पाण्डेय-- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास पृ० ४६७ प्रथम खण्ड ।

३- मनु स्मृति

व्रतमुष्टि, व्रतार्क भाणा आदि प्रमुख हैं । इसी प्रकार कार्तिक माहात्म्य, वैशाख महात्म्य, तीर्थ माहात्म्य आदि प्रमुख हैं ।

रामायण एवं महाभारत में आए हुए स्तोत्रों से अवतारवाद की प्रतिष्ठा स्पष्ट हो जाती है । मानव धर्म के रक्षणार्थ, दुष्टों के दलनार्थ तथा भक्तों के रंजनार्थ निर्गुण ब्रह्म सगुण, मनुष्य रूप धारण करके हमारे बीच आते हैं :-

नष्ट धर्म व्यवस्थानां कालेकाले (वा०रा० ६।११७।२६)

समाज में राम के अन्य देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा एवं आस्था के कारण पौराणिक कालीन देवी-देवताओं का पूजन होता रहा । केवट, शबरी आदि के प्रसंगों की गाई गई स्तुतियां राम के लोकोपकारी रूप की प्रतिष्ठापना करती हैं । राम के द्वारा रामेश्वरम् में शिव लिंग की स्थापना और उनकी स्तुति इस बात का प्रमाण है कि आर्यों ने अनार्यों के लिंग में अपनी अग्नि का समावेश करके महादेव का रूप दिया । इससे यह प्रमाणित होता है कि भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का समन्वय की भावना विद्यमान थी ।

महाभारत के अनेक स्तोत्रों से सामाजिक,राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन का अनुभव हो जाता है । द्रौपदी द्वारा कृष्ण की पुकार इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए असत्य का आश्रय लिया जाता था । युधिष्ठिर का राजसूय और जनमे जय का नागयज्ञ और उसमें प्रयुक्त स्तोत्र कर्मकाण्ड एवं बलिप्रथा का स्मरण कराते हैं । इसके अतिरिक्त विभिन्न देवी-देवताओं के स्तोत्रों से यह बात सिद्ध है कि भारतीय जीवन श्रद्धा, विश्वास एवं ब्राह्मणों के कर्म काण्ड पर कितनी आस्था रखता था ।

शाक्त
"~~शक्ति~~ मत" में त्रिपुरासुंदरी की आराधना होती है जिसे शिव एवं शक्ति का समन्वित रूप माना जाता है । वैयाकरण इसकी उपासना पश्यंती वाणी के नाम से उपासना करते हैं । शक्ति मत वाले इसे चंद्रमा के तुल्य मानकर उपासना करते हैं जिस प्रकार चंद्रमा की सोलह कलाएं हैं उसी प्रकार उस की उपासना भी "नित्य षोडशिका" नाम से की जाती है । इस मत में "योग" की प्रधानता है ।

पूजा-पद्धति :

जैन धर्म के स्तोत्रों में उनके तीर्थंकरों की ही उपासना हुई है । जिन्हें अवतार मानकर मूर्ति-रूप दिया गया और उनके लिए मंदिरों की स्थापना की गई । जैन धर्म में शक्ति की भी उपासना की जाती है । "धर्म ध्यान के अंतर्गत पदस्थ नामक ध्यान में हिन्दुओं के षटचक्रवेध की पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवता का चिंतन किया जाता है । जैन मन्त्रों में प्रणव (ऊंकार) माया (ह्रीं) आदि बीज अक्षर शाक्त-तंत्रों के अनुरूप ही होते हैं केवल मुख्य देवता रूप में 'अरि हंताणम्' यह जैन पंचाक्षरी ली गई है।[1]

बौद्ध धर्म भी जैन धर्म की भांति ही वैदिक कर्म काण्ड के प्रतिरोध स्वरूप प्रादुर्भूत हुआ था। इसके तीन रूप हैं- हीनयान,महायान और वज्रयान । शून्य-वादियों का शून्यता ही वज्रयानियों का वज्र तत्व है -----"यह शून्य 'निराला' है अर्थात् देवीरूप है जिसके गाढालिंगन में बोधिचित्त सदा बद्ध रहता है तथा युगल मिलन सर्वकाल के लिए सुख तथा आनन्द उत्पन्न करता है ।[2] जिसे 'सहज-सुख' कह सकते हैं । यही साधना 'अवधूति मार्ग' भी कहलाती है । सिद्धाचार्यों का सीधा मार्ग यही है जिसमें साधक वाम अथवा अन्य मार्गों का मोह छोड़कर मध्यम मार्ग ग्रहण करता है । वज्रयान तथा महायान के उदय होने से बौद्धों में भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई । तांत्रिक बौद्ध धर्म में पांच देवता हैं -- -- अक्षोभ्य, वैरोचन, अमिताभ, रत्नसंभव तथा अमोघ सिद्धि । जिनके विशिष्ट वर्ण और वाहन हैं । अक्षोभ्य-नील वर्ण, हस्ति वाहन, वैरोचन- उज्ज्वल वर्ण, सर्पवाहन, अमिताभ- लालवर्ण, मयूर वाहन, रत्नसम्भव- पीतवर्ण, अश्ववाहन तथा अमोघसिद्धि- हरित वर्ण गरुणवाहन है ।

अब यदि हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की सामाजिक स्थिति पर एक दृष्टि डाली जाय तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक श्रद्धा

१- कल्याण, शक्त्यंक-- पृ० ५४४-५४६ ।

२- हिन्दी-साहित्य का वृहत इतिहास- पृ० ४५६ ।

एवं विश्वास की धारा इस काल में भी प्रवाहित होती रही । पृथ्वीराज रासो में लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, भद्रकाली, कामाख्या, ज्वाला, जालंधरी, मोहनी रूप आदि देवियां एवं दशावतार की स्तुति इस बात की ज्वलंत उदाहरण है कि समाज में इनके प्रति पूर्व काल की भांति ही पूर्ण आस्था थी। जालन्धरी देवी उसकी थीं इष्टदेवी। नदियों का जल आज भी पवित्र माना जाता है और भारतवासी उन्हें देवी के रूप में सम्मानित करते थे । गंगा, गोदावरी, नर्मदा आदि की स्तुतियां इस बात को प्रमाणित करती हैं ।साथ ही साथ द्वारिका, मथुरा, काशी आदि दर्शन इस बात का प्रमाण हैं कि जनता में तीर्थ-यात्रा एवं पवित्र धामों में आराध्य देव के दर्शन करने जाना भी उनके जीवन का कर्तव्य था । योगिनी, शाकनी,डाकनी आदि की स्तुति समाज में प्रचलित तन्त्र-मन्त्रों का प्रभाव स्पष्ट करती हैं । चन्द ने चामुंडा एवं दुर्गा की स्तुति की है और उनसे युद्ध विजय की कामना की है । इन स्तुतियों से तात्कालीन राजनैतिक वातावरण का आभास मिल जाता है । रासो ग्रंथों में पौराणिक यज्ञ-परम्परा के अनेक प्रमाण हैं । पृथ्वीराज रासो के ४८वें तथा ४९वें समयों में जयचंद द्वारा समायोजित विशाल राजसूय यज्ञ का वर्णन मिलता है । यम [illegible] की आराधना भी इस काल में होती थी जो आगे चलकर समाप्त हो गई । भैरव एवं त्रिशूल, भाला, मूसल, छीरका आदि स्तोत्र इस बात के प्रमाण हैं कि इस काल में किन किन अस्त्रों का प्रयोग किया जाता था । चन्द ने बावन सिद्धों का वर्णन किया है जब कि चौरासी सिद्धों की चर्चा पूर्व काल से चली आ रही थी ।

विद्यापति ने अपने शिव विषयक स्तोत्रों में शिवजी के बुढ़ापे का वर्णन किया है :---

फलए गैला मोर बुढ़वा जती। पीराल भांग रहल सेहि गती ।।
आन दिन निकहि रहथि मोर पती । आजलगाह देखें कोन उदगती ।।
एकसर जोहए जाएब कोन गली । ठेसि खसब मोरि होत दुरगती ।।
नंदन वन बिच मिलल महेस । गौरि हरखित भैल छुटल कलेस ।।
भनइं विद्यापति सुनु हे यती। इहो जोगिया थिक त्रिभुवन पती ।।
----पद २३६

इसमें शंकर जी की वृद्धावस्था एवं सामाजिक दुर्व्यसन का चित्रण है जो सम्भवत: उस समय के सामाजिक वातावरण पर प्रकाश डालता है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में ----- "विद्यापति ने महादेव के बुढ़ेपन का वर्णन भी किया है, केवल उनके औढ़म पने का ही नहीं । इसका सामाजिक कारण भी हो सकता है । वृद्धविवाह और बाल विवाह समाज में बहुत दिनों से प्रचलित हैं और उनके कारण नारी जाति कष्ट भोगती आ रही है ।"[१]

गंगा-स्तुति में कवि ने समाज में गंगा के प्रति श्रद्धा एवं देवत्व का भाव स्पष्ट किया है । हिन्दू समाज भागीरथी गंगा को माता के समान स्थान देकर पूजता आ रहा है और उसे पापों से मोक्ष देने वाला समझता है :--

" अन्तकाल जन बिसरत मोहि ।"

शंकर के पूजन में अक्षत, चन्दन, गंगाजल, एवं बेलपत्र का आज प्रयोग किया जाता है । सम्भवत: विद्यापति के समय में भी इन का प्रयोग होता होगा :--

"अछत चानन अदर गंगाजल
बेलपात तोहि देब, हे भोलानाथ ।।

---पद२४२

कृष्ण की स्तुतियों में तुलसीदल और तिल का प्रयोग आया है जो कि विद्यापति के समय में पूजन की सामग्री के अन्तर्गत था :--

माधव बहुत मिनति कर तोय ।
दए तुलसी तिल देह समर्पितु दय जनि छाड़नि मोय ।।

--- पद २५२

इन सब स्तुतियों से उस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उस समय के समाज में भी स्तवन के साथ-साथ नैवेद्य आदि के अर्पण की प्रथा थी और

१- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -- हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग १, पृ० १२०

मंदिरों का निर्माण भी होता होगा । उनकी शिव-विषयक स्तुतियों से इस बात का भी प्रमाण मिल जाता है कि १२वीं शताब्दी में बिहार में शैव धर्म का प्रचार था और जनता शैव धर्म को अधिक महत्त्व देती होगी ।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है --- "बारहवीं शताब्दी में लगभग समूचे भारत में शैवमत का प्राबल्य था । उत्तर में उसका एक प्रधान कारण और महत्वपूर्ण रूप नाथमत था जो दक्षिण के शैव मत से बहुत संबद्ध नहीं जान पड़ता ।[१]

स्तोत्र-काव्य में जीवन के सभी क्षेत्रों की अभिव्यक्ति नहीं है ।इसमें मानव और ईश्वर अथवा इष्टदेव के बीच के पारस्परिक सम्बन्ध का सम्यक निरूपण होता है । इसलिए देश अथवा समाज के संस्कृति को परिपूर्ण चित्रण उसमें नहीं प्राप्त किया जा सकता । फिर भी उसके माध्यम से संस्कृति की जो झांकी मिलती है उससे समाज के आध्यात्मिक और नैतिक जीवनका चित्र बहुत कुछ सामने आ जाता है । आदिकाल में स्तोत्रों से यह प्रकट है कि इस काल में पौराणिक काल से चली आती हुई बहुदेवोपासना इस काल में भी यथावत चली आ रही थी । तीर्थाटन, देवदर्शन, व्रतोपवास आदि में लोगों की अपार श्रद्धा थी। देवताओं के पूजन में पंचोपचार, षोडशोपचार अथवा अष्टादशोपचार पूजनपद्धति या अवलम्बन किया जाता था । जैनों और बौद्धों में सम्पर्क के कारण बहुत से नए नए देवी-देवताओं की पूजा भी आरम्भ हो गई थी। भगवान् के चौबीस अवतारों के प्रति लोगों में भक्ति भाव था परन्तु सम्भवत: दश अवतार ही प्रमुख थे । बाराह, नृसिंह, कच्छप आदि भगवान के अवतारों की पूजा इस समय सम्भवत: पर्याप्त पचलित थी । यद्यपि भक्तिकाल में राम और कृष्ण की भक्ति के प्रवाह में अन्य अवतारों की पूजा का प्रचार या तो नहीं रह गया था या बहुत कम हो गया था। राधा-कृष्ण की भक्ति का प्रवाह आदिकाल में चाहे वेगसे प्रवाहित न हुआ हो किंतु उनकी प्रेम-लीलाएं लोक गीतों तक में गाई जाती थीं । इसका प्रमाण विद्यापति की पदावली से मिलता है । इन स्तोत्रों से मंदिरों और देवालयों की असाधारण समृद्धि काप्रमाण मिलता है और इस

१- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी --- हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ ३८

बात का भी प्रमाण मिलता है कि उपासना की पद्धति धीरे धीरे बड़ी असाध्य और जटिल होती जा रही थी । इस काल के लिखे हुए स्तोत्रों में जि नदियों और पर्वतों का निर्देश हुआ है उनके प्रति बड़ा पूज्यभाव मिलता है । उनमें नर्मदा, यमुना, गोदावरी, आदि को विशेष महत्व दिया गया है । देश के उत्तर-दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों सीमाओं के बीच में पड़ने वाले तीर्थ स्थानों और प्रमुख देवालयों के प्रति अपार श्रद्धा का भाव व्यक्त किया गया है जिससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि यद्यपि देश कई बड़े बड़े राज्यों में विभक्त था और उनमें परस्पर युद्ध भी होते रहते थे फिर भी जनसाधारण में अव्यक्त मानस में राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता की भावना विद्यमान थी। नाथों और जैनों ने अपनी वाणी में समाज में प्रचलित रूढ़ियों और विश्वासों पर बड़ा ही तीखा प्रहार किया है[1] जिससे यह पता चलता है कि उससमय जाति-प्रथा का विस्तार बराबर होता जा रहा था । साथ ही साथ इन साधुओं की भी आलोचना करने वाला एक धर्म था जो इनके तंत्र मंत्रों का विरोध करता था । अन्ध विश्वास बढ़ रहा था और इससे लाभ उठाने वाला एक वर्ग भी समाज में तैयार हो ही गया था जो अपने आपको धर्म का ठेकेदार बताता था । सिद्धों की वाणी से इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि उस समय अनेक प्रकार की गुप्त साधनाएं प्रचलित हो गई थीं और पंच मकार आदि का प्रचार हो गया था । मुसलमानों के आक्रमण का प्रभाव भी कतिपय स्तोत्रों में लक्षित होता है । ऐसे स्तोत्रों में म्लेच्छों से आक्रान्त पृथ्वी के उद्धार की प्रार्थना की गई है । समाज में स्वप्न सिद्धान्त को भी महत्व दिया जाता था क्योंकि चंद ने स्वप्न में देवी-देवताओं की स्तुति की है ।

संत-साहित्य अपने समय की सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों की [illegible] भूमि से अंकुरित हुआ था जिसका पल्लवित रूप कवि मलूकदास, दादू आदि संतों की बानियों से सहज ही प्राप्त हो जाता है । संतों के स्तोत्र-साहित्य में

१- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास -- भाग १, पृ० ३५१-५२

यदि एक ओर उच्चकोटि के भक्ति तत्व विद्यमान हैं तो दूसरी ओर वे अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वातावरण का भी प्रतिविम्ब उपस्थित करते हैं। संत साहित्य के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी का सामाजिक रहन-सहन ज्ञात है[1] जन साधारण अपनी मुक्ति के लिए तीर्थ-व्रत का अधिष्ठान करता रहता था। भारतीय परम्परा में पलने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, या सिख हो, अपने धार्मिक स्थानों को महत्त्व देता है। संतों ने इसका विरोध करते हुए आराध्य की शरण-याचना की है[2]।

समाज में जन साधारण पाप-पुण्य की चिंता न करके भोग-विलास में लिप्त रहता है परन्तु जब उसके अज्ञान नेत्र ज्ञान-ज्योति से उन्मुक्त हो जाते हैं तब उसे पाश्चाताप होता है और प्रभु की शरण खोजता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति अनेक स्तोत्रात्मक प्रसंगों में विद्यमान है[3]

संतों ने अपने समय की वर्ण-व्यवस्था के प्रति भी अपने घृणात्मक

१- जा दिन ते पिय गवन कियो है सिंदुरा नयहिरो मंग।
पान फुलेल सबै सब त्याग्यो, तेल न लावों अंग।।
--- नामदेव की वानी- शब्द संग्रह पृ०२६।

२- तीरथ बरत न करूं अंदेसा तुम्हरे चरनकमल क भरोसा।।१।।
जहं जहं जाऊं तुम्हरी पूजा, तुमसादेव और नहिं दूजा।।२।।
---रैदास की वानी-- शब्द संग्रह पं०३१।

तीरथ ब्रत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो।
तुमहिं ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो।।
--धनी धर्मदास-शब्द संग्रह पृ० ३६।

३- जनम पाय कुछ भलो न कीन्हो तातैं अधिक डरूं।।२।।
गुरु मत सुन कुछ ज्ञान न उपज्यो, पशुवत उदर भरूं।।३।।
--- गुरु नानक- शब्द संग्रह पृ० ४७।

भाव व्यक्त किए हैं । उनके विचार से जाति-पाँति का भेद-भाव भक्ति-भावना के मार्ग का अवरोध है जिसके रहने से भगवान् की भक्ति नहीं हो सकती । जातीय वैभिन्नता आन्तरिक- एकाग्रता को नष्ट कर देती है । भगवान् के भक्त को इन सब का तिरस्कार करना पड़ता है । धरनीदास जी के पदों से इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं[1] ।

सहजोबाई की बानियों में शृंगारिक वस्तुओं का भी वर्णन प्राप्त होता है[2] । हिन्दू-समाज में प्रचलित कर्मवाद का भी चित्रण अनेकानेक प्रसंगों में मिल जाता है । हिन्दू समाज अपनी शोचनीय अवस्था को भी कर्मानुसार ही मानता है और उसकी मुक्ति के लिए या तो परमात्मा का आश्रय लेता है[3] या फिर कष्ट, सहन करने में अपने जीवनको नष्ट कर देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संतों के विषय में लिखा है ---"इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें

१- हरिजन हरिके हाथ बिकाने ।
भावे कहो जगढग जीवन है, भावें कहो बौराने ।।१।।
जाति गंवाय अजाति कहाये, साधु संगति ठहराने ।
मेरो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने ।।२।।
----शब्द संग्रह पृ० १५

२- निरखत नटवर मदन मनाेहर कुंडल झलक पलक बिथुराई ।
नाथ बुलाक हलत मुक्ताहल हीठ मटक गति भौंह चलाई ।।
---शब्द-संग्रह पृ० १७७ ।

३- (क) काम क्रोध मद लोभ मोह यह करत सबहिन जेर ।
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे परे करम के फेर ।।
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक ऐसे ऐसे ढेर ।
खोजत सहज समाधि लगाए प्रभु को नाम न नेर ।।
अपरंपार अपार है साहिब हैं अधनी तनहेर ।
------ शब्द संग्रह पृ० ६५ ।
(ख) हो करता करमन के दाता, आगे बुधि आकल नहिं होसो ।
---- शब्द संग्रह पृ० १६६ ।

और भेद भाव का कुछ परिहार हो । बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खंडन वे मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा) नमाज, रोजा आदि की असारता दिखाते हुए ब्रह्म, माया, जीव, अनहद नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्मज्ञानी बनकर करते थे । सारांश यह कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेद भाव फैला हुआ था, वे शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे"।[1]

धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त पूजा-पाठ के अन्धविश्वास ने ही संतों को उनके विरोध के लिए बाध्य किया था। सम्पूर्ण संत साहित्य ही इसका प्रमाण है । यहां तक कि यह दूषित अंध विश्वास ही इस प्रकार के साहित्य का मूल कहा जा सकता है।[2] इस्लाम के प्रभाव से शास्त्रों का पठन-पाठन एक प्रकार से शून्यवत ही था । जहां एक और शासक वर्ग बलपूर्वक इस्लामी शिक्षा देता था वहां अनेक हिन्दू स्वयं इसलाम धर्म को स्वीकार कर लेते थे । कबीर ने उसका अनेक स्थलों पर विरोध किया है ।[3]

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल-- हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७० ।

२- पूजा अरचा आहि न तोरी । कहु रविदास कवनि गति मोरी ।
आखिलाखिल नहिं काकह पंडित कोई न कहै समझाई ।।
---- रैदास ।

३- (क) पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै आखर पीव का, पढ़ै सो पंडित होय।
------ कबीर ।

(ख) पांधे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्लां कोरु ।
(नानक) तिनां पास न मटीये, जो सबदे दे चोरु ।।

- ---साखीसंग्रह, पृष्ठ ७०।

सत्संग इत्यादि के विषय में भी संतो ने अपने विचार अनेकानेक स्त्रोत्रात्मक प्रसंगों में व्यक्त किए हैं। सत्संग बल पर ही परमात्मा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है[1]।

इस प्रकार स्त्रोत्र-साहित्य के आधार पर उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक दशा का यथार्थ परिचय मिल जाता है। वैदेशिक शासन के कारण भारतीय सामाजिक जीवन और भी जटि हो गया था। परिणामतः हिन्दू और मुसलमान या तो एक दूसरे के सन्निकट आ जाते थे या फिर खुलकर एक दूसरे का विरोध करते थे। यही कारण था कि सामाजिक एवं धार्मिक वैभिन्नता ने भक्ति के भी आधार को एक नवीन दिशा से प्रभावित कर लिए थे जिनमें फंस कर जन साधारण कर्तव्य-च्युत हो जाता था। संतो के अनेक स्त्रोत्रात्मक प्रसंग इस बात की स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं। १५वीं से १७वीं शताब्दी तक का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन महत्वपूर्ण नहीं था।

सूफियों के स्त्रोत्र-साहित्य में कलापक्ष के अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष भी यथास्थान विद्यमान हैं जिसके आधार पर उसकाल की राजनैतिक, समाजिक एवं आर्थिक स्थिति का परिचय प्राप्त हो जाता है। इन कवियों में जायसी का साहित्य विशेष महत्व का है। जायसी ने अपने पद्मावत के प्रारम्भ में शेरशाह की स्तुति की है[2] जिसके मूल में उनकी या तो शासक के प्रति विशेष श्रद्धा है अथवा राजभय है। राजतंत्र के कारण जन-साधारण को सदैव अपने शासक का भय रहता था। यद्यपि इतिहासकारों ने शेरशाह के शासन की अधिक प्रशंसा की है।

१- जब दरवौं तब दीजियौ तुम पैं मांगो येहु।
दिन प्रति दरसनसाध का, प्रेम भगति द्रिढ देहु ।।५।।
----साखी-संग्रह पृ० ८७

२- दीन असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुगराज।
बादशाह तुम जगत के जग तुम्हारे मुहताज ।।
बरनौं सूर भूमिपति राजा। भूमि न भार सहै जेहि साजा।।
हय गयसैन चलै जग पूरी। परवत टूटि उड़हिं होई धूरी ।।
----जा०ग्रं० स्तुति खण्ड

जायसी के स्तोत्र-साहित्य से धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति का स्पष्ट भास होता है । मुसलमान होने कारण उन्होंने 'कुरान' के धार्मिक भावों को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है ।[2] इसलाम धर्म की अनेक बातों का समावेश पद्मावत और अखरावट में हम पाते हैं।[3] हिन्दुओं के प्राचीन रीति-रिवाजों का भी वर्णन उनके स्तोत्रों के द्वारा हुआ है । पाचीनकाल में पत्रभंग की रचना श्रृंगार करने में होती थी । प्राय: उन्हें कपोलों के पास से कानों तक पंक्तिबद्ध चिपकाया जाता है । जायसी ने पद्मावती के श्रृंगार वर्णन में इस को महत्व दिया है ।[4]

मंदिर में देव-पूजा की परम्परा अति प्राचीन काल से चली आ रही है । जन - साधारण मंदिरों में जाकर आराध्य की स्तुति कर अपनी आकांक्षा पूर्ति की प्रार्थना करता है । इसके लिए कभी कभी अनेक प्रकार की मिन्नतें भी की जाती हैं । पद्मावती की शंकर प्रार्थना इसी प्रकार की है ।[5]

समाज में स्त्रियां अनेक प्रकार के आभूषणों का प्रयोग करती थीं जिनका आभास पद्मावती के श्रृंगार वर्णन से सरलता से हो जाता है ।[6]

२- कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू । कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ।।
स्तुति खण्ड ।

३- जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० १८३

४- रचि पत्रावलि मांग सेंदूरू। भरे मोतिऔं मानिक चूरू ।। जा०सं०

५- और सहेली सबै बियाहीं । मो कहं देव कतहुं वर नाहीं ।
हौ निरगुन जेइ कीन्ह न सेवा । गुनिनिरंगुनि दाता तुम देवा ।
वर सौं जोग मोहि मेरवहु, कलस जाति हौं मानि ।
जेहि दिन हीक्षा पूजै बेगि चढ़ावहूं आनि ।।६।। -- वसंत खण्ड ।

६- स्त्रवनसीप दुइ सीप संवारे । कुंडल कनक रचे उजियारे ।।
मनि-कुंडल फलकैं अतिलोने । जनु कौंधा चौकहि दुहकोने ।।
दुहुं दिसि चांद सुरुज चमकाहीं।नरवतन्ह भरेनिरखि नहिं जाहीं।।
तेहि पर खूंट दीप दुइ बारे । दुइ घ्रुव दुऔं खूंट बैसारे ।।
पहिरे खुंभी सिंहलदीपी । जनौं भरीक चपचिपा सीपी ।।

---क्रमश:----

प्राय: कवियों में आराध्य की वंदना के साथ - साथ धामों (पवित्र स्थानों) की वंदना की भी प्रवृत्ति रही है । जैसा कि पूर्व प्रसंगों में पद्मावती के नखशिख को आराध्य का नखशिख माना गया है और सारी योजना प्रतीकवत स्थापित की गई है । यसी प्रकार सिंहलद्वीप वर्णन भी पद्मावती से सम्बन्धित होने कारण एक पकार से पवित्र स्थान ही कहा जा सकता है । सिंहलद्वीप के वर्णन से उस समय के लोगों की विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रवृत्तियों का पूर्ण अनुभव किया जा सकता है । समाज में मुनष्य के जीवन में नित्यप्रति नाना-प्रकार की क्रीड़ायें होती हैं ।लोगों की विभिन्न प्रकार की रुचियां होती हैं और जन-सामान्य उनके प्रति सरलता से आकर्षित हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण हैं । जायसी ने सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।[१] उस काल की कला का भी स्पष्ट विवेचन सिंहलद्वीप के वर्णन से प्राप्त हो जाता हैं । प्राय: भवनों को नाना प्रकार के मूल्यवान् वस्तुओं से सुसज्जित किया जाता था जिसकी परम्परा आज भी समाज में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है।[२]

६- (पिछले पृष्ठ का------) कंटसिरी मुकुतावली साहैं अमरन जीउ ।।
लागै कंठहार होइ को तप साधा जीउ ।।३।।
कनकदंड दुइ भुजा कलाई । जानौं फेरि कुंदेरै माई।।
औ पहिरे नग जरी अंगूठी । जगविनु जीउ जीउ ओहि मूंठी ।।
---- न० खण्ड।

१- कतहूं कथा कहै किछु कोई । कतहूं नाच-कूद भल होई ।।
कतहूं चरिहंरा पंखी लावा। कतहूं पखंडी काठ नचावा ।।
कतहूं नाद सबद हो भला । कतहूं नाटक चेटक-कला ।।
कतहूं काहु ठगविद्या लाई । कतहूं लेहि मानुष बौराई ।।
चरपट चोर गंठिछोरा मिले रहहिं ओहि नाच ।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बांच ।।१५ ।।
(सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड)

२- हीरा ईंट कपूर गिरावा। औ नग लाई सरग लै लावा ।।
जावत सबै उरेह उरेहे । भांति-भांति नग लाग उबेहे ।।
साव कटाव सब अबनत भाती । चिग कोरि कै पांतिहिं पांती।।
लाग खंभ मनि मनि जरे । निसदिन रहहिं दीप जनु बरे।
देखि धौरहर कर उंजियारा । छबि गए चांद सुरजु औ तारा ।।

उनके विभिन्न वर्णनों के द्वारा उस काल के व्यापार और आर्थिक वातावरण का भी अनुभव हो जाता है । जायसी ने अपने समय में प्रयुक्त होने वाली नित्य प्रति की वस्तुओं का व्यापार अपने विभिन्न वर्णनों के द्वारा स्पष्ट किया है जो इस बात का स्पष्ट प्रदर्शन करता है कि उस काल के व्यापारी किन किन वस्तुओं का व्यापार करते थे, किन किन वस्तुओं का आयात और निर्यात होता था । कवि और लेखक प्राय: उन्हीं वस्तुओं का वर्णन करते हैं जो उस समय समाज में नित्यप्रति के जीवन में आती रहती हैं। वसंत खण्ड में इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि संभवत: विभिन्न प्रकार केमसाले इत्यादि व्यापार के लिए भारत में ही तैयार किये जाते थे[१]।

इस प्रकार जायसी केवल श्रृंगार वर्णन में ही अद्वितीय कवि नहीं हैं वरन् उनकी स्तुतियों में अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का पूर्ण परिपाक हुआ है । मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियां उनकी योग्यता का स्पष्ट प्रमाण देती हैं । यद्यपि वे एक मुसलमान सूफी कवि थे परन्तु अपने विभिन्न वर्णनों में उन्होंने न तो भारतीय रीति-रिवाजोंको को ही भुलाया है और न सांस्कृतिक पक्ष का ही निषेध करने का प्रयत्न किया है । यद्यपि मसालों और फलों का वर्णन प्रसंगानुसार ही हुआ है परंतु

१- काहू गही आंव कै डारा। काहू जाक विरह अति फारा ।।
कोइ नारंग कोइ फाड़ चिरौंजी । कोइ कटहर, बड़हर, कोइ न्योजी ।।
कोइ दारिउ कोइ दाख आखोरी । कोइ सदाफर , तुरजें जमीरी ।।
कोइ जायफर, लौंग, सुपारी, कोइ नारियर, कोइ गुवा, छोहारी।।
कोइ बिजौंर, करौंदा जूरी ।कोइ अमिली, कोइ महुआ खनूरी ।।
कोइ हरफारेवरि कसौंदा । कोइ अंवरा, कोइ राय-करौंदा ।।
कोहू गही केरा कै घौरी । काहू हाथ परी निंबकौरी ।।
(वसंत खण्ड)

ये वर्णन इस बात के सब्ल प्रमाण हैं कि जायसी के समय में उन सभी वस्तुओं का व्यापार होता रहता था । इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -------- जायसी कवि थे । और भारतवर्ष के कवि थे । भारतीय पद्धति के कवियों की दृष्टि का रस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखने वाली होती है । इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं।"[१]

सगुण मार्गी कृष्ण भक्त कवियों के स्त्रोत्रों में तात्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक पदार्थों का भी चित्रण हुआ है । जिनके आधार पर उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

सामाजिक अवस्था :

कृष्ण-भक्त कवियों ने यदि एक ओर अपने स्त्रोत्रों में कृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्ति भावना का प्रदर्शन किया है तो दूसरी ओर उन्होंने उस समय के सामाजिक विधि-विधान का भी विवेचन किया है । ऐसे अनेक स्त्रोत्रात्मक पद हैं जिनमें भवन-निर्माण[२] आदि के विषय में लिखा गया है । उस काल में गावों का विशेष महत्व था और साथ ही साथ आज के से कच्चे मकान भी बनाये जाते थे :--

काहु भयो मेरो गृह माटीकों --- सारावली - ४२३६ ।

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल--- जायसी ग्रन्थावली- भूमिका । पृष्ठ संख्या १६५ ।

२- परमानन्द दास संग्रह--- पृष्ठ ६२ ।

प्रतिदिन के भोजन में माखन, मिश्री, दही, मलाई, षटरस भोजन, सिखरन, छत्तीस व्यंजन आदि के भी उल्लेख उन कवियों के स्त्रोत्रों से प्राप्त किये जा सकते हैं । प्रमाण के लिए कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं :--

तिन में बैठे छाक खात मदन रूप मंडली रची ।
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन आनि आगे थार संची ।।[१]
पातनि पै धरत भात, दधि सिखरन लिए हाथ ।।
----- छीत स्वामी पद ७७।

गोकुल और मथुरावासी अपने नित्यप्रति के भोजनों की भांति मसालों का भी प्रयोग करते थे । उनके सम-मिष्ठान्नों का भी विवेचन इन भक्तों के स्त्रोत्रों में मिल जाता है :--

हींग, हरद, मिर्च, छौंके, तैले अदरख और आंवरे मेलौ।
साल सकल कपूर सुवासत, स्वाद लेत सुंदर हरिग्रासत ।।[२]

व्यारु कीजे मोहनराय ।
मधु मेवा पकवान मिठाई विंजन सरस बनाय।
दार भात और कढ़ी बरी की मिस्त्री पनो छनाय ।।[३]

बाल-कृष्ण के नित्य प्रति कछनी, पीताम्बर, झगा आदि पहनाया जाता था। साथ ही लाल झगुलिया, दाद चौतनी, सुथनी, पटुका, पिछौरा, आदि का भी प्रयोग होता था । मस्तक पर चन्दन का तिलक, नैत्रों में सुर्मा डिठौना आदि बालकों के श्रृंगारिक प्रसाधन थे । कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है ---

(१) मोहन पीत झगुलियां सोहे ।।[४]
(२) मोर मुकुट पीताम्बर काछे ।।[५]
(३) सूथन लाल अरु सेत चोलना कुल्हे जरकसी अतिमन भावत ।।[६]

१- परमानंद दास संग्रह पृ० ६२
२- चतुर्भुजदास पृ १७०
३- सारावली पृ० ३६६
४- परमानंद पद संग्रह पद ७८५
५- वही-- पद ६०
६- सारावली --- पद १५०८

राधा-कृष्ण के श्रृंगार वर्णनों के अनेक पदों में सामान्य जीवन के श्रृंगारिक प्रसाधनों को प्रकाशित किया गया है । ये प्रसाधन सुंदर केश-विन्यास, अंजन, महावर, मेंहदी, तिलक आदि थे जिनके बखान बड़ी श्रद्धा सेकिया गया है । यद्यपि यह सब साधारण जन-समाज में प्रयुक्त होता था, किंतु राधा-कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण ये स्तोत्रात्मक आधार प्राप्त कर लेते हैं । अनेक पदों में इस के उदाहरण हैं :---

(१) राजति राधे अलक भलीरी ।[१]

(२) सेंदुर तिलक तबोल खुटिला वेन विसेख ।
सोहत केसरि आड कुमकुम काजर रेख ।।[२]

परिवार में शिष्टाचार की प्रवृत्ति को[३] महत्वदिया जाता था, नाना प्रकार के विश्वास और मान्यताएं भी प्रचलित थीं ।[४] आज भी समाज में उसी प्रकार की मान्यताओं को महत्व दिया जाता है । उस समय के समाज में गायों का महत्व सर्वाधिक था । जनसाधारण से लेकर शासक वर्ग तक उनका सम्मान करता था । गोपालन या गोचारण आदि के प्रसंग परम्परागत साहित्य से आए हैं । यद्यपि श्री मद्भागवत आदि पूर्ववर्ती साहित्य में भी मिलते हैं किन्तु इस कृष्ण भक्त कवियों की उनके वर्णन की तल्लीनता[५] प्रकारांतर से ब्रजभूमि के आर्थिक जीवन को भी प्रकाश में लाती हैं । गोपालन का व्यवसाय ब्रजभूमि के एक वर्गमें उस समय प्रचलित था ही, आजभी अत्यधिक मात्रा में देखा जा सकता है ।

१- सारावली -- पद १७०३ । २- चतुर्भजदास-- पद ८०
३- सारावली -- पद १४०६ । ४- परमानंददास- पद ४८६ ।

५- (क) प्रथम गोचारन चले कन्हाई ।
माथे मुकुट पीताम्बर की छबि बनमाला पहराई ।

(ख) प्रथम गोचारन चले गोपाल ।
जननि जसोदा करति आरती मोतिनि भरि भरि थाल।।
मंगल सब्द होत तिहिं औसर मिलि गावति ब्रजबाल ।।
विविध सिंगार पहिरि पट-भूषन रोरी तिलक दै भाल ।।
सब समाज लै चले वृन्दावन आगे कीनी गाइ ।
राई-लौन उतारनि जननी गोविंद बलि बलि जाइ ।।

धार्मिक स्थिति

स्तोत्रों के द्वारा कृष्ण भक्त कवियों ने अपने समय की सामाजिक स्थिति तो बताई ही है धार्मिक स्थिति का भी पूर्ण-विवेचन किया है । यद्यपि पूर्व अध्यायों में मैंने इन भक्त कवियों के दार्शनिक एवं भक्ति पक्ष पर विचार किया है परंतु इसी के साथ-साथ सामाजिक धर्म की व्यवस्था का भी अध्ययन अपेक्षित है । इन वर्णनों से १६वीं एवं १७वीं शताब्दी के धार्मिक जीवन का भी पता लग जाता है । सूरदास जी के सूरसागर में अयोध्या, कुरुक्षेत्र, गया, गोकुल, द्वारिका, नैमिषारण्य, प्रयाग, वाराणसी, मथुरा, वृन्दावन, आदि वर्णन आए हैं । ग्रहण इत्यादि के अवसरों पर इन तीर्थ स्थानों पर स्नान इत्यादि प्रचलित था । इस प्रकार इन तीर्थ स्थानों की भी प्रशस्ति गाई गई है :--

बड़ौ परब रवि - ग्रहन, कहाकहौं तासु बड़ाई ।।[१]

व्रत इत्यादि के विधान का भी विवेचन इन भक्तों के स्त्रोत्रों में आ गया है :--

पूरनानंद मूरति जो नंद अरु घर में सुत सब सुख कंद ।
सो एकादसि व्रत आचरैं, हरि इच्छा बिनु क्यों अनुसरैं ।।[२]

तीर्थ स्थानों से सम्बन्धित उपर्युक्त उल्लेखों से प्रमाणित है कि जहां कृष्ण भक्ति साधना में उनका सेवन आध्यात्मिक जीवन का प्रधान अंग था, वहां वह जन सामान्य के जीवन में परम्परागत श्रद्धा एवं आस्था के रूप में भी प्रतिष्ठित रहा होगा ।

राधा-कृष्ण के अतिरिक्त समाज में इष्टदेवता, इन्द्र, गोवर्द्धन, विष्णु सूर्य, शिव-पार्वती, देवी गणपति, शारदा, एवं कदंब वनदेवी का भी पूजन होता था । पौराणिक भक्ति भावना पूर्ण रूपेण समाज में सरस्वती की धारा की भांति प्रवाहित हो रही थी ।

१- सूरदास

२- नंददास-- दशम, पृ० ३१८

निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है :--

(१) कतहूं अर्घ्य दैत सूरज को ।[1]

(२) सिवशंकर हमको फलदीन्हौं ।
पुहुप, पान, नाना फल मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौं ।
पाइ परीं जुवतीं सत यह कहि, धन्य-धन्य त्रिपुरारि ।।
तरतहिं फलपूरन हम पायौं, नंद सुवन गिरिधारि ।।[2]

(३) गौरि गनेस्वर बीनऊं (हो) देवी सादर तोहिं ।
गावौं हरि को सोहिलौं (हो) मन आखर दै मोहिं ।।[3]

राजनैतिक वातावरण :

कृष्ण भक्त कवियों ने मध्यकाल की शासन व्यवस्था का उचित वर्णन किया है । शासन में कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के अधिकारी सैन्य, संगठन दुर्ग-निर्माण आदि के विषय में भी स्तोत्राकारों ने संकेत किया है :--

सांचो दिवान है री कमल नयन ।
(१) तू मेरो ठाकुर जसुदानंद, कैं तू है जगत जीवन ।।[4]
(२) सुनियत कहूं द्वारिका बसाई ।
दच्छिन दिसा तीर सागर कै, कंचनकोट गोमती खाई ।।[5]

वाणिज्य :

अनेक पदों से यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भारतीय व्यापारी विदेशों से भी आयात-निर्यात करते थे । नित्य-प्रति के जीवन में प्रयुक्त होने वाली नाना प्रकार की वस्तुओं का परिचय स्तोत्रों से मिल जाता है । दूध दही आदि का विक्रय उस समय के अहीरों की दिनचर्या थी । कुछ पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है :--

---

१- सारावली-- पद ६७८
२- सारावली --पद ७६८
३- सारावली --पद १०-४०
४- परमानंद दास-- पद ८८०
५- सारावली--- पद ४२६२

कहौ कान्ह, कहगथ है हम सौं ।
जा कारण जुवती सब अटकीं, सो बूझति हैं तुमसौं ।
लौंग नारियर, दाख, सुपारी, कहं लादे हम आवें ।
हींग , मिरिच, पीपरि अजवाइन, ये सब बनिज कहावें ।।
कूट कायफर सौंठ चिरइता कटजीरा कहुं देखत ।
आलम जीठ लाख सेंदुर कहुं ऐसेहि विधि अवेखत ।।
वाइविउंग वहेरा हरैं बैल गौन व्यौपारी ।।[१]

दैनिक व्यवहार की वस्तुएं :

स्त्रोत्रों में कंचन, पारद, सुहागा, तांबा , लोह आदि वस्तुएं भी प्रयुक्त हुई हैं जो उस काल की खनिज वस्तुओं का संकेत करती हैं :--

(१) एक लोहा पूजा में लागत एक घर बधिक परो ।।[२]
(२) तनक सुहागो डारिके जड़कंचन पिघलाय ।
सदा सुहागिनि राधिका क्यों न कृष्न ललचाय ।।[३]

इस प्रकार राधा-कृष्ण भक्त कवियों के स्त्रोत्रों में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का परिचय मिल जाता है । उनके द्वारा एतद्विषयक उल्लेख केवल ब्रज-प्रदेश के जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालते वरन् उससे उत्तर भारत के भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का स्पष्टीकरण हो जाता है । समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, मान्यताएं एवं विश्वास अपने युग का सजीव चित्रण करा देते हैं । आराध्य के द्वारा ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से मुक्ति मिल पाती है । अत: भक्त प्राण-प्रण से उसका निवेदन कर उसी में लीन होने का प्रयत्न करता है । महान कवि का सामाजिक चित्रण करते समय समाज में प्रचलित कौन सी बातें परम्परागत हैं और कौन -कौन सी परिस्थिति-जन्य ।

१- सारावली-१५२८

२- सारावली-- पद १-२२

३- परमानंद दास- हस्तलिखित प्रति, ३५२ ।

यदि वह परिस्थिति जन्य बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है तो उसकी लोक प्रियता का क्षेत्र धीरे धीरे सीमित होता जाता है और वह परम्परागत बातों को अपनाने की दूरदर्शिता दिखाता है तो उसके काव्य का महत्व अपेक्षाकृत स्थायी और प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है ।[१]

रामभक्त कवियों में गोस्वामी जी का स्थान सबसे श्रेष्ठ तो है ही भारतीय संस्कृति में भी उनका सर्वाधिक योगदान है । उनका समस्त स्तोत्र-साहित्य मानव जीवन की विपत्तियों का सरल मार्ग है । रामकथा के माध्यम से जो संदेश उन्होंने भारतीय जनता को दिया उसने सांसारिक जन जीवन को भी एक दिव्य ज्योति प्रदान की । डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र ने लिखा है ---" हम राम बनें, रावण नहीं, हम रामराज्य की व्यवस्था लाने में सहायक हों रावणराज्य की व्यवस्था लाने में नहीं, यही भारतीय संस्कृति का संदेश है जो संसार की समग्र मानव-जाति को सुनाया जा सकता है और जिसके सुनने के लिए आज समग्र संसार व्यग्र हो रहा है । गोस्वामी जी ने इस संदेश को बड़ी खूबी के साथ अपने ग्रंथ में निहित किया है ।[२] राम के द्वारा रामराज्य की कल्पना उनका मुख्य उद्देश्य था । गोस्वामी जी का समस्त साहित्य मध्यकालीन राजनैतिक, सामाजिक,धार्मिक एवं नैतिक अवस्था का दिग्दर्शन कराता है । यद्यपि रामकाव्य का प्रणयन केशव, सेनापति आदि कवियों ने भी किया है परन्तु संस्कृति का आदर्श रूप गोस्वामी जी केही स्तोत्र-साहित्य में प्राप्त होता है । वैदेशिक शासन से उत्पीड़ित एवं त्रस्त जनता एक आश्रय की कामना कर रही थी जो उसकी रक्षा कर सके । बालकाण्ड की स्तुतियां एवं विनय पत्रिका के पद इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं :---

राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है ।
नीति, प्रतीति प्रीति परमित पति हेतु वाद हठि हेरि हई है।।

१- डा० मायारानी टंडन--- अष्टछाप-कवियों का सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ० ३१६

२- डॉ०बल्देव प्रसाद मिश्र--- भारतीय संस्कृति पृ० ८५

आश्रम व्यवस्था का भी विघटन हो रहा था ---

आश्रम-बरन-धरम-विरहित जग, लोक-वेद-मरजाद गईं है ।।
---पद १८६ ।

परनिन्दा, नरपीड़न, भोग विलास एवं दान इत्यादि से अरुचि हो गई थी:--

पर गुन सुनत दाह , पर-दूषन सुनत हरख बहु तेरो ।
आप पापको नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ।।
--- वि०प० १४३

परन्तु समाज में आतिथ्य सत्कार, सहृदयता एवं शिष्टाचार का महत्व समझा जाता था :---

कौल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुंदर स्वाद सुधासी।।
भरि भरि परन पुरीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ।।
सबहि देहिं करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा।।

यद्यपि कोल-किरातों में शिष्टाचार का अभाव दिखाई पड़ता है परन्तु उनमें उपासना स्नेह, आस्था एवं आतिथ्य-सत्कार का भाव उच्चकोटि का है। इसी प्रकार की भावना निषाद के प्रसंग में भी विद्यमान है।

गोस्वामी जी ने भागवत के धार्मिक प्रभाव का भी विवेचन किया है। पूर्वअध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि उनका समस्त साहित्य नाना पुराण निगमागम सम्मत था। शबरी के प्रसंग में राम के द्वारा नवधा भक्ति का संदेश दिया गया है।

कवितावली, बरवै रामायण[१] एवं मानस की अनेक स्त्रोत्रात्मक छंद तत्कालीन वेश-भूषा एवं आभूषण आदि पर प्रकाश डालते हैं :--

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ि तविनिदंक बसन सुरंगा ।।
व्याह विभूषन विविध बनाए। मंगल सब सब भांति सुहाए ।।

^ ^ ^ ^

१- बरवै रामायण २, ३, ६, १० आदि ।

जगमगत जीनु जराव जोति सो मोति मनिमानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुरनर मुनि ठगे ।।
---- बालकाण्ड ।

सामान्य जीवन के बीच पालकी आदि का प्रयोग होता रहा है :--

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं तौ भव-बेगारि महं परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ।।
बांस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोलारे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोलारे ।।
----विनय पत्रिका- १८६ ।

मुगल सम्राटों की वास्तुकलाप्रियता संसार प्रसिद्ध है । विभिन्न प्रकार के भवन और उनकी शिल्पकारी विश्व में प्रसिद्ध हैं । मानस में विवाह के समय जनकपुर में वितान-निर्माण के द्वारा मुगल कालीन वास्तुकला का यथार्थ चित्रण किया गया है :--

बहुरि महाजन सकल बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ।।
हाट बाट मंदिर सुरवासा । नगर संवारत चारिहु पासा ।।
हरषि चले निज-निज गृह आए । पुनि परिचारक बोलि पठाए।।
रचहु विचित्र वितान बनाई ।सिरु धरि वचन चले सचु पाई ।।
पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे वितान-विधि-कुसल सुजाना।।
विधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक कदलि के खंभा।।

^ ^ ^ ^

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ।।
किए भृंग बहुरंग बिहंगा । गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ।।
सुर प्रतिमा खंभन्ह गढ़ि काढ़ीं । मंगल द्रव्य लिए सब ठाढ़ीं ।।
चौकें भांति अनेक पुराईं । सिंधुर-मनिमय सहज सुहाई ।।

सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नील-मनि कोरि ।
हेम बवरि मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि ।।
-----बालकाण्ड [1]

इसी प्रकार पुष्प बाटिका में सरोवर वर्णन गिरजागृह आदि भी वास्तकला के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

उस समय के नैतिक जीवन के दो पहलू- गोस्वामी जी ने उपस्थित किये हैं । उनके द्वारा सबकी बन्दनाएं[1] समाज के लिए एक सुंदर उपहार के रूप में हैं जिसका प्रयोग जन जीवन में अति आवश्यक है । उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण के विषय में पूर्ववर्ती अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है । राम-सीता के अतिरिक्त वे समस्त देवी देवताओं के प्रति श्रद्धावान् थे । डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने लिखा है ------" सन्तों द्वारा किया गया सगुण साकार खंडन ही गोस्वामी जी को पसंद नहीं आया परन्तु सगुण पंथ के स्थापन के लिए भी उन्होंने तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और भावना पर ही विशेष बल दिया है --

जाके रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ।
जोके हृदय भगति जस प्रीती, प्रभु तंह प्रगट ताहि तस रीती ।।[2]

शक्ति की पूजा के साथ वामाचार की तांत्रिकता इतनी सम्मिलित हो चुकी थी जिसे गोस्वामी जी कभी पसंद न कर सकते थे । फिर भी उन्होंने अपनी आराध्या सीता जी के मुख से जगदम्बा पार्वती जी के विषय में सर्वोच्च भावनाएं व्यक्त करवाई हैं :--

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ।।
भवभय विभव पराभव कारिनि । विस्व विमोहिनि स्वबस विहारिनि।।

एक शक्ति इससे अधिक और क्या कह सकेगा ?

कहना न होगा कि शक्ति की पूजा में उसका सर्वसामर्थ्यसम्पन्न रूप शक्ति साधना में प्रतिष्ठित किया गया है । पार्वती की उक्त वंदना में यह रूप दृष्टिगत होता है किन्तु इसके साथ ही तुलसी का सीता को उसी प्रकार की देवी के रूप में देखना गोस्वामी जी का समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचायक है जो सदा से भारती संस्कृति की प्रधान प्रवृत्ति ही रही है ।

१- डा० बासुदेव शरण अग्रवाल के निबन्ध -साहित्य के साथ कला का संबन्ध से उद्धृत ।

२- बालकाण्ड (

" अब रहे शिव, राम और कृष्ण । सो , पुरुष प्रधान परम्परा में पले गोस्वामी जी ने इन तीनों में एकदम अभेद देखा है । विनय पत्रिका के उनके पद देखिए । जो राम हैं वही कृष्ण हैं और जो राम तथा कृष्ण हैं वही शिव हैं, यह गोस्वामी जी ने कई स्थलों पर कई ढंगों से स्पष्ट किया है ।[१] महात्मा गौतम बुद्ध के पश्चात् उन्हें सबसे बड़ा लोक नायक माना जाता है । तुलसी का समस्त स्तोत्र-साहित्य राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से मानव जीवन का पदप्रदर्शक एवं निर्माता है ।

जिस समय राजसिंहासन के लिए युद्ध होते थे, एक भाई दूसरे के संहार के लिए प्रयत्न शील रहता था, अन्त:पुरों में अनेक राजमहिषियों का रखना अनिवार्य था । गोस्वामी जी ने राम के द्वारा पितृ प्रेम, मातृ प्रेम, भ्रातृप्रेम एवं एक पत्नी व्रत का सुंदर आदर्श मानव जीवन के सम्मुख उपस्थित किया । भरत और लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति तत्कालीन राजनैतिक जीवन पर सीधा व्यंग्य है । नाना प्रकार के तंत्रों-मंत्रों, पंडों पुजारियों के प्रति उन्होंने घृणा प्रदर्शित नहीं की है वरन् उनके आदर्श और नैतिक कार्यों का व्यंग्य के साथ स्मरण कराया है । भक्ति के साथ विश्वास और आस्था की जो आवश्यकता अनिवार्य है उनका सबका महत्वपूर्ण विवेचन गोस्वामी जी के स्तोत्रों में पर्याप्त रूप में दिखाई पड़ता है । उनका भक्त हृदय जन-मन मानस को साधुमय संदेश देकर समाज एवं संस्कृति के रक्षण की उद्घोषणा करता है ।

रीति-कालीन स्तोत्र-साहित्य केवल कला पक्ष की दृष्टि से ही महत्व पूर्ण नहीं है वरन् उसके आधार पर तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का भी अध्ययन किया जा सकता है । चिंतामणि, मतिराम, भूषण, पद्माकर, बिहारी आदि के स्तोत्रात्मक प्रसंगों से इन तथ्यों का पूर्ण अनुभव होता है। वैदेशिक शासन से पादाक्रान्त सत्रहवीं शताब्दी उन्नीसवीं शताब्दी तक का समय सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त ही शोचनीय था । सुरा-

---

१- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र--- भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान पृष्ठ ७३-७४।

सुन्दरी का गुणगान उसकाल के सामन्तों की मान-मर्यादा का प्रश्न बन चुका था जिसकी एक हल्की सी छाया जन-साधारण पर भी पड़ चुकी थी और साथ ही साथ मुस्लिम धर्म ने हिन्दू समाज को और भी भयभीत करना प्रारम्भ कर दिया था । भूषण के शिवाजी विषयक स्तवनों से इसका पूर्ण आभास हो जाता है :----

राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद - विधि सुनी मैं ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजनकी ,
धरामें धरम राख्यो, राख्यो गुनगुनी मैं ।।

वेद राखे, विदित पुरान राखे सार युत,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं ।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखीगर मैं ।।
मीडि राखे मुगल मरोरि राखे पातसाह,
बैरि पीसि राखे, वरदान राख्यो कर मैं ।
राजनकी हद्द राखी तेग-बल सिवराज
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर मैं ।।

----भूषण ।

यदि सामाजिक अध:पतन की उपर्युक्त अवस्था न होती तो शिवाजी का आवाहन क्यों किया जाता । सामाजिक पराभव एवं धार्मिक- विरोध के अनेकर उदाहरण रीति-कालीन स्तोत्रों में प्राप्त होते हैं :---

थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि ।
तुमहू कान्ह मनौ भए, आजु कालिके दानि ।।

--- बिहारी ।

ह्वै अति आरत मैं विनती बहुबार करी करुना रस-भीनी ।
कृष्ण कृपानिधि दीनके बंधु सुनी अपनी तुम काहे को कीनी ।।

रीझते रंचक ही गुन सों वह बानि बिसारि मनो अबदीनी ।
जानि परी तुमहू हरि जू कलिकाल के दानिन की गति लीनी ।।
---- कृष्णाकवि ।

अथ: पतित समाज में रहकर मनुष्य प्रथम तो पाप-कर्म में रत होता है परन्तु जब उसे यथार्थ का अनुभव होता है तो वह पाश्चाताप कर मुक्ति की कामना करता है । निम्नलिखित स्तोत्रात्मक छंद से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । गंगा जी से मुक्ति की याचना की गई है :---

कलुष- हरनि सुख-करनि सरन जन, बरनि बरनि जसकहत धरनि धर।
कलिमल-कलित बालित-अघ खलगन, लहत परमपद कुटिल कपटतर ।।
मदन-कदन सुर-सदन बदन ससि , अमल नवल दुति भजन भगतधर ।
सुरसरि तव जल दरसपरस करि, सुरसरि समगति लहत अधम नर ।।
--- थानकवि ।

जैसी सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था होती है उसी प्रकार जन-साधारण की भी रुचि बन जाती है । समाज यदि कुछ व्यक्तियों की धार्मिक प्रकृति होती है तो कुछ उससे विरोधी बनकर रहते हैं । नागरीदास के निम्नलिखित स्तोत्रात्मक छंद में इसी प्रकार की भावना है :---

जो मेरे तन होते दोये ।
मैं काहू ते कछु नहिं कहतो, मोतें कह तो नहिं कोय ।।
एक जो तन हरिविमुखन के संग रहतो देस विदेश ।
विविध भांति के जग-दुःख-सुख जंहँ नहिं भक्ति लवलेस ।।
एक जो तन सतसंग-रंग रंगि रहतो अति सुख -पूर ।
जनम सफल करि लेतो ब्रज बसि जह ब्रज-जीवन-मूर ।।
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै हैं, आयु ताछिन छिन छीजै ।
नागरिदास एक तन तें अब कहों काह करि लीजै ?

रजवाड़ों की ऐश्वर्यमयी भावना का धार्मिक क्षेत्र में भी प्रभाव पड़ा था और राधाकृष्ण भी मतवाले नेत्रों से एक दूसरे की ओर संकेत करने लगे थे:--

लाल तेरे लोभी लोलुप नैन ।
केहि रस-छकनि छके हौं छबीले मानत नाहिंन चैन ।।
नींद नैन घुरि घुरि आवत अति, घोरि रही कछु नैन ।
अबलेली अलि रस के रसिया कत विरत ये बैन ।।

----जनक राजकिशोरी शरण ।

रजवाड़ों की भोग-विलासमय प्रवृत्ति से खिन्न होकर भक्तों ने अपने अनेक पदों में माया-मोह से मुक्ति की कामना की है और उसके लिए वृन्दावन का वास उपयुक्त बतलाया है :--

हमारो बृन्दावन दूर और ।
मायाकाल तहां नहिं व्यापै जहां रसिक- सिरमौर ।।
छूटि जात सत असत वासना, मनकी दौरा -दौर ।
भगवत रसिक बतायो श्री गुरु अमल अलौकिक ठौर ।।

----भगवत रसिक ।

डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने इसकाल की सामाजिक स्थिति के विषय में लिखा है कि समाज में श्रृंगारी कविताओं को प्रश्रय तत्कालीन राजाओं के कारण ही मिलता था क्योंकि "विलासी बादशाहों ने ऐसी रचनाओं को संरक्षण प्रदान किया, समृद्ध जनता ने उनके द्वारा अपने मनका बोझ हल्का हुआ समझा। हिन्दुओं की भक्ति भावना के अन्तर्गत राधा-कृष्ण की प्रेम लक्षणा भक्ति की प्रतिष्ठा हो ही चुकी थी। हिन्दी की कविता में नायक-नायिकाओं की चर्चा चल पड़ी और वह तत्कालीन अतिरंजित वातावरण में रंग गई ।[१] राधा-कृष्ण का श्रृंगारी रूप इसी भावना का परिणाम है । मंदिरों में राधा-कृष्ण की मूर्तियों की स्थापना ही अधिक होती थी और उनके पदों का गानकर भक्त अपने अन्त:करण में शान्ति का अनुभव करता था । श्रृंगारिक प्रवृत्ति से ही अधर्म की उत्पत्ति होती है और मानव पथ-भ्रष्ट हो जाता है । मनियारसिंह का निम्नलिखित छंद इस तथ्य का स्पष्ट प्रदर्शन करता है :---

---

१- डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी-- रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगार विवेचन पृ० २६८

मेरो चित्त कहां दीनता में अति दूबरी है,
अधरम- धूमरो न सुधि के संभारे पै ।
कहां तेरी ऋद्धि कवि बुद्ध -धारा- ध्वनि तें,
त्रिगुण तें परे ह्वै दिखात निरधारे पै ।।
मनियार यातें मति थकित जकित ह्वै कें,
भक्ति बस धरिउर धीरज विचारे पै ।
विरची कृपाल वाक्यमाल या पुहुपदंत,
पूजनकरत काज चरन तिहारे पै ।।

पार्वती की चरण-पूजा में ही भक्त को सब प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती है ।

इस प्रकार रीतिकालीन स्तोत्र-साहित्य केवल पर हम पूर्ण रूपेण सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं का अध्ययन कर लेते हैं । यद्यपि भूषण, सूदन आदि की रचनाओं में उस काल की सांस्कृतिक रक्षा का आभास हो जाता है पर साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक एवं धार्मिक अध:पतन से देश के रक्षण की भी आवश्यकता थी । यही राष्ट्रीयता की चिनगारी आधुनिक काल तक प्रज्जवलित होती रही जिसका पूर्ण प्रयोग अंग्रेजों के विरोध में भी किया गया । इस प्रकार यदि एक ओर रीति कालीन स्तोत्र-साहित्य में श्रृंगारिक प्रवृत्ति थी तो दूसरी ओर उसने राष्ट्रीययता का भी फूंका था ।

जिस सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति की क्रोड़ में भक्तिकाल का जन्म हुआ था उसी प्रकार की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति ने आधुनिक काल के साहित्य की भी नींव डाली थी वैदेशिक शासन से उत्पीड़ित भारतीय जनता भगवान् से रक्षण की तो प्रार्थना कर ही रही थी साथ ही साथ उसे अपनी संस्कृति की भी चिंता थी ।

इस युग की एक राष्ट्रीय समस्या यह भी थी कि अंग्रेजों ने राष्ट्रीय भावना के मूलोच्छेदन के लिए देश के प्रति गौरव की अनुभूति को ही समाप्त करके उसकी नींव पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया था, जिससे कि भारतवासी

अपने देश के प्रति श्रेष्ठता एवं श्रद्धा का अनुभव ही न कर सकें । मिस मेमों द्वारा लिखित 'मदर इण्डिया' नामक पुस्तक इसका ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत करती है।इस का उत्तर उस समय के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय ने "फादर इण्डिया" लिख दिया । इस युग की राष्ट्रीय धारा की हिन्दी कविता ने देश के निवासियों के बीच आत्म गौरव की भावना भरने के लिए भावात्मक प्रवृत्ति अपनायी । स्तोत्र-साहित्य की कोटि में आने वाली एतद्विषयक रचनाओं में कहीं भारतभूमि को मातृभूमि, पितृभूमि तथा देवभूमि कहा गया है तो कहीं उसके दिव्य प्राकृतिक सौंदर्य का श्रद्धा पूर्ण वर्णन किया गया है जिसे हम पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत लक्ष्य कर चुके हैं । यहां उदाहरण स्वरूप केवल एकाध रचनाओं का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा ।

सत्यनारायण कविरत्न ने भारतभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य में दिव्यता का आराधन करते हुए प्राचीन गौरव का स्मरण इस प्रकार किया है :---

पावन परम जहां की मंजुल महात्म्य धारा ।
पहले ही पहल देखा जिसने प्रभात प्यारा ।।
सुरलोक से भी उत्तम ऋषियों ने जिसको गाया ।
देवेश को जहां पर अवतार लेना भाया ।।

वह मातृभूमि मेरी । वह पितृभूमि मेरी ।।

बाबू मैथिली शरण गुप्त ने भी अपनी भारत-भारती का गान लगभग इसी प्रकार प्रस्तुत किया था जिसकी प्रधान विशेषता उसे देवी का रूप प्रदान करना है ।[१] इसी प्रकार स्वदेश संगीत में वे भारतभूमि को सर्वेश्वर भगवान की सुगुण मूर्ति घोषित करते हैं[२] । स्तोत्र-साहित्य में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना किस प्रकार उद्बुद्ध होती दृष्टिगोचर होती है ।

१- ब्राह्मी स्वरूपा जन्मदात्री, ज्ञान गौरव शालिनी ।
साक्षात लक्ष्मी रूपिणी, धनधान्य पूर्णा पालिनी ।।
ब्रह्माण्ड रूद्राणी स्वरूपा शत्रु सृष्टि लयंकरी ।।
यह भूमि भारतवर्ष की है भूरि भावों से भरी ।।

२- करते अभिषेक पयोध है बलिहारी इस देशकी
है मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति रूपेण की ।।

विज्ञान के प्रभाव से वर्ग-भेद का भी अंत हो रहा था और उसके स्थान पर विश्व बन्धुत्व तथा हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना भी द्रुतगति से बढ़ रही थी। आधुनिक काल के तीनों युगों के स्तोत्रों में एतदविषयक चित्रण भली भांति हुआ है ।

सामाजिक अध:पतन और उसकी उन्नति की कामना प्रत्येक भारतवासी के हृदय में विद्यमान है। वह भगवान् से अपने लिए प्रार्थना नहीं करता है वरन् कोटि-कोटि भारतवासियों के त्रसित जीवन का प्रतिनिधित्व करता है । इस प्रकार के अनेक उदाहरण इसकाल की स्तोत्रात्मक रचनाओं मे प्राप्त होते हैं।[१]

इस अध:पतन एवं प्राचीन संस्कृति के मोह के कारण आधुनिक कवियों ने कहीं कहीं उद्बोधनात्मक स्तोत्र लिखे हैं । इस प्रकार के स्तोत्रों में पूर्व गौरव के प्रति सजगता और देश-कल्याण की भावना विद्यमान है । साथ ही साथ

---

१. मातृहीन सब प्रजावृंद करि जगतरुलाई ।
मातु विजयनी हाय-हाय सुरलोक सिधाई ।।
----रायकृष्ण दास ।

डूबत भारतनाथ वेगि जागो अब जागो ।
आलस-दवएहिन दहन हेतु चहुं दिसि सों लागो ।।
महामूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो ।।
अपुनो अपनायो जानिकै करहु कृपा गिरिवर धरन।
जागो बलि वेदहि नाथ अब देहु दीन हिन्दुन सरन।।
----- भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, पृ० ६८३ ।

हम कौन थे क्या हो गए और कौन हम होंगे
अभी आओ विचारें आज मिल कर यह समस्यायें सभी।।
-----मैथिली शरण गुप्त ।

विधिकीइच्छा सवत्र अटल, यह देश प्रथम ही था हतबल,
वे टूट चुके थे टाट सकल वर्णों के,
तृष्णोद्धत स्पर्धागत सवर्ग क्षात्रिय रक्षा से रहित सर्व,
द्विज चाटुकार, हत इतर वर्ग पर्णों के ।।
----निराला-तुलसीदास ।

ग्राम एवं नगरों के उत्थान की प्रार्थना है जिसे जन-साधारण की स्थिति का अच्छा प्रमाण कहा जा सकता है ।[१]

अनेक रचनाओं में जाति भेद के विनाश की भी आकांक्षा की गई है। प्रजातंत्र के युग में सामान्य समाज ही विश्व बन्धुत्व उत्पन्न कर सकता है[२]।

देशकल्याण और जन सेवा की भावना आधुनिक स्तोत्रों का विशेष आधार है । नवधा भक्ति भी अब केवल आराध्य की अर्चना तक ही सीमित नहीं है वरन् दलित अकिंचनों एवं असहायों की सहायता के लिए । विज्ञान के साथ-साथ मानव की प्रवृत्तियां भी परिवर्तित हो गई हैं[३]।

राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ आधुनिक काल में अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम और उसके उत्थान की भावना पूर्ण रूपेण व्याप्त हो चुकी है । अब केवल एक देश का

१- सभ्य देश बाहर से संस्कृत, भीतर बर्बर, आत्म-प्रवाड़ित,
घृणा द्वेष स्पर्धा भय पीड़ित- काल दष्ट्र में रे अणु मत । इन्हें भाव दो ।।
--पंत (वाणी)

नगरनरक, जनकीर्ण अप्राकृत, ग्रामस्वर्ग हों संघ विकेन्द्रित ।।
सरल सौम्य सात्विक जीवन मित शिक्षा न हों लोग हों संस्कृत ।
इन्हें रूप दो ।। पंत (वाणी)

२- राष्ट्र वर्ग से निखरे मानव, जाति वर्ण के क्षय हो दानव,
नव प्रकाश भव का हो अनुभव, रहे न मन भौतिक तमसावृत ।
इन्हें भाव दो ।। पंत (वाणी)

३- पानी देना तृषित जन को अन्न भूखे नरों को ।
सर्वात्मभक्ति अतिर रुचिरा अर्चना संज्ञका है ।।
नाना प्राणी तरु गिरि लता बेलि की बात ही क्या।
जो हैं भू में जगततल में भानु से मृत्कणों त्यों ।।

देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा ।
है भक्ति लोक-पति की पद सेवनार क्या ।। ---- प्रियप्रवास --
-- (हरिऔध)

नहीं वरन् समस्त विश्व का कल्याण आवश्यक समझा जा रहा है । पंत एवं निराला की स्तोत्रात्मक रचनाएं इसी प्रकार की हैं।[1] राष्ट्र प्रेम का परिवर्द्धित रूप भारतमाता को देवत्व प्रदानकर सामने आया और उसके कल्याण के प्रति जन-मन मानस में एक नवीन चेतना आई।[2]

हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना भी इस काल के स्तोत्रों में प्राप्त होती है। मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं एकता की भावना का पूर्ण समर्थन इस काल की स्तोत्रात्मक रचनाओं का मुख्य आधार है :--

हिन्दू मुसलमान ईसाई यश गावें सब भाई भाई
सब के सब तेरे शैदाई फूलो फलो स्वदेश ।।[3]

१- जग के उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन ।
बरसो लघु लघु तृण तरु वर में । हे चिर अव्यय चिर नूतन ।
बरसो कुसुम-- -- केसावन ।।
-- पंत (पल्लविनी)

२- जिस पर गिरकर उदर-दरी से जन्म लिया था।
जिसका खाकर अन्न सुधासम नीर पिया था ।
जिससे हमको प्राप्त हुए सुख साधन पूरे ।
जिसपर हुए समाप्त हमारे पूर्वज प्यारे ।।
वह पुण्य भूमि भारत यही हम सब इसकी सन्तान हैं ।
कर इसकी सेवा हृदय से पा सकते सम्मान हैं ।
----रामनरेश त्रिपाटी
(सरस्वती जनवरी १९२४)

ऊंचा ललाट जिसका हिमगिरि चमक रहा है ।
सुवरन किरीट जिस पर आदित्य रख रहा है ।।
साक्षात शिव की मूरति जो सब प्रकार उज्जवल।
बहता है जिसके सिरपर गंगा का नीर निर्मला ।।
वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी ।। --मैथिली शरण गुप्त ।

३- महावीर प्रसाद द्विवेदी--- द्विवेदी काव्य माला पृष्ठ ४५३ ।

इस प्रकार की एकता के बल पर ही भारतीय संस्कृति का उत्थान हो सकता है। देशवासियों को अपनी भाषा, संस्कृति एवं देशभक्ति के भाव को ध्यान में रखकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए। अपने आराध्य से भी इसके लिए प्रार्थनाएं की गई हैं :-

राम तुम्हें यह देश न भूले।
धाम धरा धन, जाय भले ही यह अपना उद्देश्य न भूले।।
निज भाषा, निज भाव न भूले, निज भाषा, निज वेश न भूले।
प्रभो, तुम्हें भी सिंधु-पार से सीता का सन्देश न भूले।।[1]

कवि केवल अपने देश का ही कल्याण नहीं चाहते वरन् वे सम्पूर्ण विश्व को भी व्यथाहीन देखना चाहते हैं। गुप्त जी की आध्यात्मिक मनोवृत्ति भक्ति-भावना का ही एक प्रकार है, जिसमें मानवतावादी प्रवृत्ति का भी समावेश हुआ है, यथा

हरे! तुम्हारी करुणा-धारा तारा-हाराकारा,
धोती रहे धरा के धब्बे, बहे ग्लानि-श्रम सारा।
जीवन सुधा पिये यह वसुधा, रहे भवाब्धि नरवारा,
प्रेम-वृष्टि सविवेक दृष्टि से सृष्टि एक परिवारा।।[2]

प्रसाद एवं मैथिली शरण गुप्त की रचनाओं में इस काल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था का अच्छा चित्रण हुआ है। स्वर्ग और नरक की मान्यता के स्थान पर इस काल में स्वकर्म की भावना का जागरण हुआ है। मनुष्य अपने कार्यों से इस पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण कर सकता है। मानव-शक्ति ही उसकी अधिष्ठात्री है।[3]

१- मैथिली शरण गुप्त---- स्वदेश संगीत, पृष्ठ १

२- डॉ० कमला कान्त पाठक -- मैथिली शरण गुप्त, व्यक्तित्व और काव्य-- पृ० ५३५

३- सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
मैं भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।---- साकेत।

बना लो जहां पर वहीं स्वर्ग है, स्वयं भूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग का है सदाचार है, मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।।
----- मैथिली शरण गुप्त।

प्रसाद जी ने कामायनी में वैदिक संस्कृति का आधुनिक रूप उपस्थित किया है । मानव-प्रकृति में कल्याण एवं विनाश की दोनों शक्ति विद्यमान हैं। जैसा कि डा० फतहसिंह ने लिखा है ----"प्रकृति के प्रत्येक अंग में दोनों शक्तियां हैं जो मानवीय प्राकृतिक शक्तियां आज जगत के कल्याण के लिए प्रयुक्त हो रही हैं वह कल संहार करने में लग सकती हैं । इसलिए प्रसाद जी ने मनु के विरुद्ध कोप इन्हीं दोनों (मानवी और प्राकृतिक) " देव-शक्तियों (१६२,१०५) द्वारा दिखलाया है :--

प्रकृति त्रस्तथी भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद अपना,
उत्तर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना ।
आश्रय पाने को सब व्याकुल स्वयं कुलष में मनु संदिग्ध,
फिर कुछ होगा यही समझकर वसुधाका थर थर कंपना ।।[१]

आज विज्ञान के विरुद्ध जो भावना उत्पन्न हो रही है उसका यथार्थ चित्रण प्रसाद जी की रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है ।

इन वर्णनों से कवि का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी लक्ष्य किया जा सकता है । इन्हें देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि कवि जहां प्राचीन कथानक पर आधुनिकता का रंग चढ़ाता हुआ दिखाई पड़ता है वहां पाठक देशकी संस्कृति के उस गौरवमय प्रभात की ओर भी खींचकर ले जाना चाहता है जिसमें मानव जीवन एक उज्जव कर्ममय जीवन का उत्तम उदाहरण था । इसी प्रकार ऐसे काव्य ग्रन्थोंके दार्शनिक निर्देश भारतीय संस्कृति की दर्शन, चिंतन एवं साधना की पीठिका भी प्रस्तुत करते हैं, जिनपर पीछे विचार किया जा चुका है और प्रस्तुत प्रसंग में विस्तार-भय से जिसपर अधिक कुछ कहना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है ।

पूंजीवाद एवं साम्यवाद के संघर्ष के फलस्वरूप आज संसार दो भागों में विभक्त हो चुका है । परिणामत: समाजवाद की भावना का भी प्रभाव जन जीवन में दिखाई पड़ रहा है । कृषकों एवं श्रमिकों की सामाजिक उन्नति आज

१- डा० फतह सिंह ---- कामायनी सौंदर्य पृ०३८

की स्तोत्रात्मक रचनाओं में व्याप्त हो रही है । आज का भगवान् दीन-हीन में है ।[१] परन्तु अन्तर्राष्ट्रीयता से प्रेम रखते हुए भी आज भारतीय संस्कृति का स्वर समाप्त नहीं करना है वरन् उसे ऊंचा उठाए रखना है तभी भारत की उन्नति हो सकेगी । डा० बल्देव प्रसाद मिश्र का कथन है ---
" शासन व्यवस्था की सुचारुता के लिए भारतीय संस्कृति अनेक स्वस्थ तत्व स्वत: दे सकती है । तथा अनेक स्वस्थ तत्व विभिन्न संस्कृतियों से भी ग्रहण कर सकती है । उसे चाहिए कि वह स्वराज्य को स्वाराज्य में परिणत कर दे ताकि वह स्वराज्य भारतीय संस्कृति के भविष्य की उज्जवलता को सुदृढ़ करता हुआ उसे सहज ही विश्व संस्कृति के रूप में परिणत कर सके"[२] ।

स्तोत्रों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक अधिष्ठान पर प्रकाश तो पड़ता ही है , साथ ही साथ यह भी दृष्टि-गत किया जा सकता है कि इनके रचनाकार एतद्विषयक साहित्य द्वारा किस प्रकार भारतीय जनता के बीच अमर सांस्कृतिक प्रेरणा जगाकर युगगत सांस्कृतिक पुनर्जागरण में कटिबद्ध हुए थे ।

द्वितीय यह महत्वपूर्ण तथ्य पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकाश में आता है कि यह स्तोत्र-साहित्य सांस्कृतिक समन्वय की भी प्रेरणा देता है। उस समय देश में दो परस्पर विरोधी समाज विद्यमान थे जिनके सांस्कृतिक अधिष्ठान भी पृथक पृथक थे किन्तु उनके मध्य की गहरी खाई पाटने का यशस्वी कार्य निर्गुण काव्यधारा द्वारा सम्पन्न हुआ । एक ओर कबीर, नानक, दादू आदि जैसे संत कवियों के उद्गारों से एकेश्वरवाद की सुदृढ़ नींव पर सामाजिक एकता की प्रतिष्ठा का प्रयास हुआ है तो दूसरी ओर हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच प्रवाहित होने वाले प्रेम प्रवाह को लेकर सूफी कवियों के द्वारा हिन्दू घरानों की जो प्रेम गाथायें लिखी गईं उनसे भी दोनों समाजों का एक दूसरे को निकट आने की अपूर्व प्रेरणा मिली ।

१- मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में, तू ढूंढता मुझे था तब दीन के वतन में ।
--राम नरेश त्रिपाठी ।

२- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र -- भारतीय संस्कृति पृ० १६८

सूफी कवियों की स्तोत्रात्मक रचनाओं में अनेक भारतीय मान्यताओं और उपासना पद्धति की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है । नाथ पंथी योगियों का सूफी साधना पर प्रभाव प्राय: विद्वानों ने स्वीकार किया है । साथ ही इन सूफियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में भारतीय समाज पर अवश्य पड़ा होगा । संत-काव्य-धारा में हुई माधुर्य भाव की अनुभूतियां सूफियों से प्रभावित हुई दिखाई पड़ती हैं । कहना न होगा कि निर्गुण काव्य-धारा की यह दोनों उपासनाएं उपर्युक्त सांस्कृतिक समन्वय एवं सामाजिक एकता के अधिष्ठान पर समकालीन जन जीवन को प्रतिष्ठित करने में संलग्न थीं ।

जहां तक व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के बीच जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा का विषय है उसमें भक्तिकाल की चारों काव्य-धाराओं का योगदान रहा जिसे हम स्थान स्थान पर प्रसंगानुसार दिखा आए हैं ।

सगुण भक्ति की राम और कृष्ण दोनों से सम्बन्धित काव्य-धाराएं शास्त्रानुमोदितजीवन पद्धति पर समकालीन सांस्कृतिक समाज के अधिष्ठान का निर्माण करने में यत्नशील रहीं, किन्तु दोनों की भक्ति-पद्धति की निजी विशेषताओं केकारण रामभक्ति में सामाजिक मर्यादाओं पर विशेष बल दिया गया और कृष्ण भक्ति में साधना के क्षेत्र में उसे विशेष आवश्यक नहीं समझा गया । फिर भी इन दोनों काव्यधाराओं ने इन भारतीय युग-पुरुषों के प्रति इतनी महान आकर्षण तथा सुदृढ़ निष्ठा की स्थापना की कि जिसके कारण तत्कालीन समाज प्राचीन भारतीय परम्परा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर सका और यह सांस्कृतिक परम्परा का स्रोत्र रीतिकाल की भाव-भूमि से होता हुआ आधुनिक काव्य धारा में अक्षुण्य रूप से चला आया ।

रीति काल में आकर उपर्युक्त सांस्कृतिक चेतना भौतिक चकाचौंध के बीच किंचित धुमिल सी दिखाई पड़ती है, किन्तु इस काल की स्तोत्रात्मक रचनाएं समसामयिक लोक-रुचि को अंकित करने में सफल हुई हैं । इतना अवश्य है कि अनेक स्तोत्र केवल कवि कर्म निर्वाह के लिए ही मंगलाचरण के रूप में अनेक कवियों द्वारा लिखे गए होंगे तथापि वे परम्परागत सांस्कृतिक निष्ठाको

न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य प्रमाणित करते हैं । अनेक रचनाओं में भाव-पक्ष के साथ कला पक्ष की उत्कृष्ट अभिव्यंजना हुई है जो सम्भवत: युगगत कला प्रेम तथा दर्बारों में ललित कलाओं के सम्मान पूर्ण स्थान के कारण आई होगी ।

स्तोत्रात्मक साहित्य ही एक ऐसा आधार है जिसके द्वारा रीति-काल ही नहीं अपितु आधुनिक काल की स्तोत्रात्मक और अनेक राष्ट्रीय काव्यधाराओं की रचनाएं मध्यकालीन साहित्य से अपना स्वभाविक सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हैं । पूर्ववर्ती विवेचन में हम स्पष्ट कर चुके हैं ।क आधुनिक काल में भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग तक भक्ति-भाव से सम्पन्न प्रभूत स्तोत्र-साहित्य लिखा गया साथ ही देश की राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होने पर स्तोत्र-साहित्य को जो नया मोड़ मिला उसने देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं आत्म-गौरव की भावना जगाई । अत: इस सम्पूर्ण विवेचन के निकर्ष रूपमें या निसंदिग्धरूप से कहा जा सकता है कि "हिन्दी का स्तोत्र -साहित्य" देश के सांस्कृतिक चैतन्य, तज्जन्य प्रेरणा और आशावाद से सम्पन्न अमर आश्वासन भी प्रदान करता है ।